Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies,
Online ISSN 2278-8808, SJIF 2016 = 6.177, www.srjis.com
UGC Approved Sr. No.49366, JAN–FEB, 2018, VOL- 5/43

जायसी की कविता पर युग और परिवेश का प्रभाव

डॉ. मुकेश कुमार

Paper Received On: 25 Jan 2018
Peer Reviewed On: 21 Feb 2018
Published On: 04 March 2018

प्रत्येक कवि के काव्य तथा उसमें वर्णित विचारधाराओं, सन्देश एवम् उद्देश्यों पर उस कवि के काल विशेष में तत्कालीन एवं पूर्ववर्ती राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का प्रभाव किसी न किसी रूप में स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित हुआ करता है। इसी आधार पर 'जायसी के काव्य में नैतिकता' पर अपने तत्कालीन एवं पूर्ववर्ती परिस्थितियों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

भारत का मुस्लिम राज्य धर्म-प्रधान राज्य था। जिसका अस्तित्व सिद्धान्त रूप में धर्म की आवश्यकताओं द्वारा उचित ठहराया गया था। सुल्तान सीज़ (राजनैतिक क्षेत्र में सर्वप्रधान) तथा पोप (धार्मिक क्षेत्र में सर्वप्रधान) का मिश्रित रूप समझा जाता था। सच पूछिए तो सिद्धान्तः धार्मिक मामलों में उसकी शक्ति कुरान के पवित्र कानून द्वारा सीमित थी तथा अलाउद्दीन के अतिरिक्त कोई सुल्तान स्पष्ट रूप से धर्म को राजनीति से अलग नहीं रख सका। पर व्यावहारिक रूप में भारत का मुस्लिम सुल्तान एक पूर्ण तथा स्वेच्छाचारी शासक था, जिस पर कोई प्रतिबंध न था तथा उसका शब्द कानून था। सुल्तान समय-समय पर बगदाद तथा मिश्र के खलीफाओं के प्रति केवल शिष्टाचार युक्त स्वामिभक्ति अदा करते थे, इसमें सिर्फ दो बार थोड़े-थोड़े समय के लिए बाधा पड़ी थी। परन्तु अपनी शक्ति के लिए वे न तो उनके (खलीफाओं) के ऋणी थे और न जनता की इच्छा के ही, यद्यपि राजसत्ता का इस्लामी सिद्धान्त वैधानिक तथा प्रजातन्त्रात्मक था। वस्तुतः भारत का मुस्लिम राज्य

Copyright © 2018, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

व्यावहारिक रूप में स्वतंत्र तथा अपने ऊपर स्वयंशासन करने वाला था और सुल्तान सारी शासन-प्रणाली का प्रधान था। सुल्तान की प्रभुता का वास्तविक साधन सैनिक शक्ति था। तथा इसे उस युग में केवल विचार शून्य जनसमूह ही नहीं, बल्कि सैनिक, कवि (उदाहरणतः अमीर खुसरो) और उलेमा भी समझते तथा स्वीकार करते थे। कार्यपालिका के सर्वोच्च स्थान के रूप में सुल्तान राजकाज उन अधिकारियों तथा मंत्रियों की सहायता से चलाता था, जिन्हें वह स्वयं चुनता था। राज्य सार रूप में सैनिक प्रकृति का था तथा सुल्तान प्रधान सेनापति था। वह प्रमुख कानूनस्रष्टा एवं अपील का अंतिम न्यायलय भी था।[1]

राजनैतिक दृष्टि से जायसी का समय 1451 से 1545 ई. तक रहा, जिसमें लोधी वंश, मुगल वंश एवं शेरशाह सूरी का शासन पर आधिपत्य था। हिन्दू शासकों की शक्ति क्षीण हो गई थी तथा मुगल साम्राज्य (1526 ई.) की जड़ें जम गई थीं। मुगल शासक अपने को विदेशी न मानकर भारतीय मानने लगे थे। विभिन्न प्रकार के अत्याचारों के मध्य इस काल में हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति एक-दूसरे के सान्निध्य में आने से परस्पर एक-दूसरे से मिल-जुल रही थी। मुगल शासकों द्वारा भारतीय साहित्य, संगीत एवं कला के प्रति रूचि दिखाई गई। एक और धार्मिक अत्याचारों से वशीभूत होकर हिन्दू जनता भी मुस्लिम संस्कृति एवं धर्म को अपनाने में लगी थी। मुगल शासक राजतंत्रीय था। एक प्रकार की सैनिक शासन व्यवस्था थी। समस्त उत्तर भारत में भक्ति आन्दोलन का प्रचार-प्रसार था, जिससे सूफी सम्प्रदाय पर भक्ति आन्दोलन एवं वेदान्त का प्रभाव लक्षित हुआ। विभिन्न कट्टर मुस्लिम शासक भी हुए परन्तु शेरशाह सूरी इसके अपवाद थे। शेरशाह को न केवल साम्राज्य-निर्माता और प्रशासक के रूप में अकबर का पूर्वागामी माना जाता है। बल्कि उसे अकबर से भी बड़ा रचनात्मक प्रतिभा वाला व्यक्ति स्वीकार किया गया है। विन्सेंट स्मिथ मानते हैं कि यदि उसे अधिक समय मिला होता तो, हो सकता है कि उसने अपना ही राजवंश स्थापित कर दिया होता, और तब भारतीय इतिहास के रंगमंच पर महान् मुगलों

Copyright © 2018, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

को अवतरित होने का अवसर ही न मिलता।[2] इसी राजनैतिक परिवेश में जायसी साहित्य का समन्वयात्मक रूप प्रतिबिम्बित हुआ।

राजनैतिक दृष्टि से जायसी का समय 1451 से लेकर 1545 ई. तक रहा। विभिन्न अत्याचारों के मध्य इस युग में हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति एक-दूसरे के सान्निध्य में आने से परस्पर एक-दूसरे से मिल रही थी। मुगल शासकों द्वारा भारतीय साहित्य, संगीत एवम् कला के प्रति रूचि दिखाई, वहीं हिन्दू जनता भी मुस्लिम संस्कृति एवं धर्म को अपनाने लगी थी। यद्यपि विभिन्न कट्टर मुस्लिम शासक भी हुए किन्तु शेरशाह सूरी इसके अपवाद थे। इसका ज्वलन्त प्रमाण हमें पद्मावत में मिलता है। न्याय के वर्णन में जायसी कहते हैं- "उसके शासन में चलती हुई चींटी को भी कोई दुःख नहीं होता था। नाक की नथ (मार्ग) में गिर गई हो तो भी कोई छू नहीं सकता था। रास्ते में लोग सोना उछालते चलते थे। नीलगाय और शेर एक घाट पर पानी पीते थे। वह धर्म से न्याय करता था और सत्य बोलता था। वह दूध का दूध तथा पानी का पानी की भांति न्याय करता था।

"अदल कहाँ जस प्रिथिमी होइ। चांटहि चलत न दुखवइ कोई।।
परी नाथ कोई छुअइ न पारा। मारग मानुस सोन उछारा।।[3]

उसकी न्याय-प्रियता के बारे में अब्बास खां शेखानी लिखता है- "वह सदा उत्पीड़ित और न्याय मांगने वाले वादी के बारे में वास्तविक सच्चाई क्या है पहले इसकी जांच पड़ताल कर लेता था, उसने कभी उत्पीड़कों या अत्याचारियों का पक्ष नहीं लिया, चाहे वे प्रतिष्ठित अमीर हों या उनके कुनबे के लोग, उसने उत्पीड़क को सजा देने के मामले में न तो देरी की और न ही नरमदिली दिखाई। उसके शासन में एक जरा क्षीण, मृत्यु मुख में पहुंचाने वाली वृद्धा अपने सिर पर स्वर्णाभूषणों से भरा टोकरा रखे यात्रा पर निकल पड़ी तब भी किसी चोर या लुटेरे की हिम्मत नहीं हुई कि वह उस बुढ़िया के पास फटक भी जाए, क्योंकि उन्हें मालूम है कि इसके लिए शेरशाह कितना बड़ा दंड दे सकता है।[4]

Copyright © 2018, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

सिंहलद्वीप के सौन्दर्य तथा प्राकृतिक वैभव का वर्णन करते हुए जायसी की दृष्टि आदर्श राज्य की रही है। जनता की सुविधा के लिए उस नगर में अनेक उपवन तथा वृक्ष आदि लगे हुए थे जिनकी छाया सर्वत्र व्याप्त थी जिसकी छाया में पथिक आदि अपनी क्लान्ति को दूर करते थे। नगर में चारों ओर उपवन आदि लगे थे जहां की अपरिमित गंध से वृक्ष भी चन्दन की गंध के समान सुवासित हो जाते थे-

'पुनि फुलवारी लगि चहुं पासा। बिरिख बेधि चंदन में बासा।।[5]

वहां पग-पग पर जनता की सुख-सुविधा को दृष्टि में रखकर अनेक कुएं तथा बावड़ियों आदि का निर्माण किया गया था।...

"पैग पैग पर कुआं बावरी। साजी बैठक औ पावरी।।[6]

15वीं शती में भारतीय मुसलमानों की सामान्य प्रवृति हो गई कि वे अपने पड़ोसी हिन्दुओं से मेल-जोल बढ़ाए, जिससे हिन्दू-मुस्लिम एकता का सूत्रपात होने लगा। आगे चलकर अकबर के समय में इसका प्रतिफलित रूप देखने को मिलता है। जायसी के युग में शेरशाह ने भी हिन्दुओं के प्रति उदारता का रूख अपनाया। सामाजिक एकता में चैतन्य महाप्रभु, रामानन्द, कबीर व जायसी आदि कवियों ने अपना विशेष योगदान दिया। सहानुभूति एवम् उदारता के सूत्रपात में सूफी साधकों ने अपना विशेष योगदान दिया। इसी सामाजिक पृष्ठभूमि पर जायसी का काव्य प्रेरित हुआ।

जायसी का युग, अर्थात् भारतीय इतिहास की सोलहवीं शताब्दी कई अर्थों में उथल-पुथल का युग हैं राजनीतिक दृष्टि से मुहम्मद गौरी के बाद दिल्ली-सुल्तानों की तीन शताब्दियां शेरशाह सूरी के रूप में अपनी अन्तिम चकाचौंध दिखलाकर समाप्त हो रही थीं। नये हमलावर बाबर के साथ मुगल शहंशाहों की नयी बुनियाद पड़ रही थीं।

इन तीन शताब्दियों में दिल्ली के चारों ओर नये सामंती रिश्ते बने और बिगड़े। भारतीय मुसलमानों, नव मुसलमानों और हमलावर मुसलमानों के बीच सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक संघर्षों के कारण तरह-तरह की दृष्टियां टकरा रही थीं। हिन्दुओं

Copyright © 2018, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

और मुसलमानों के सामंती सम्बन्धों में एक तरफ तो साथ रहने की विवशता के कारण निकटता की शक्तियां काम कर रही थीं, दूसरी तरफ कट्टर साम्प्रदायिक विचारधाराएं भी थीं जो हठ कर के कुफ्र और इस्लाम के बीच किसी मेल-जोल को पैदा होने से रोकना चाहती थीं। बाबर का मुकाबला इब्राहीम लोदी ने अलग किया और राणा सांगा ने अलग। इसके विपरीत शेरशाह सूरी ने सब को साथ लेकर हुमायूं को हराया। इसी प्रकार इस्लाम में एक और कट्टर पुनरूत्थानवादियों, महदियों और मुजाहिदों के आन्दोलन उठ खड़े होते हैं, दूसरी और अबुल और फैजी जैसे उदार चिन्तक भी सामने आते हैं जो कट्टरता के पाश को ढीला करना आवश्यक समझते हैं।[7]

जायसी ने हिन्दू-मुस्लिम विरोध का बहिष्कार करते हुए उनकी एकता पर बल दिया है, यद्यपि उन्होंने ऐसे वर्णन कम ही किए है, फिर भी उन्होंने कुछ स्थानों पर हिन्दू-मुस्लिम के भेदभाव और ऊंच-नीच के परित्याग तथा एक दूसरे के धर्म के प्रति सहिष्णुता और उदारता दिखाने की प्रेरणा बहुत प्रबल दिखाई देती है। उन्होंने कबीर की तरह यद्यपि स्पष्ट रूप से हिन्दू-मुस्लिम विरोध को उत्तेजित भाषा में नहीं कहा है अपितु अप्रत्यक्ष रूप से कहा है।.....

"तिन्ह संतति उपराजा, भांतिहि भांति कुलीन।।
हिंदू तुरूक दुवो भए, अपने अपने कीन।।[8]

कबीर के हिन्दू और मुसलमान दो जमातों में अलग-अलग उनके पाठक है। कबीरदास जानबूझकर दोनों से समांतर दूरी की नीति बनाते हैं, ताकि उनकी निष्पक्षता पर आंच नहीं आये। हिन्दू-मुस्लिम, दोनों बिना राह पाये भटक रहे हैं, लेकिन दोनों में भटकाव अलग-अलग नहीं है, वे घुल-मिलकर सामान्य पाठक या श्रोता हो गये है। इसीलिए जायसी को न चौकन्नी तटस्थता की जरूरत पड़ती है, न आलोचना और प्रतिरोध के तराजू के दोनों पल्लों को बराबर बनाये रखने की चिन्ता व्यापती है। जायसी इस या उस धार्मिक या साम्प्रदायिक गिरोह की समीक्षा नहीं करते, न इस या उस कर्मकांड के सुधार या स्वीकृति

Copyright © 2018, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

की ही उनकी अभिलाषा है। अपने युग से जायसी ने जो बौद्धिक उन्मेष खोज निकाला वह अनोखा था, उनकी समीक्षा का विषय धर्म नहीं- मनुष्य है।[9]

शेरशाह के समय राजस्व का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत मालगुजारी था, इसलिए राजस्व के स्थिरीकरण के बारे में और कृषि उत्पादों की वृद्धि के माध्यम से राजस्व में वृद्धि करने के बारे में शेरशाह की चिन्ता स्वाभाविक ही थी- इसे मानने में कोई कठिनाई पेश नहीं आती। चूंकि कृषक समाज राज्य का आधार था, इसलिए किसानों की स्थिति में सुधार करने के लिए वह चिन्तित रहता था। किसानों की भलाई के लिए शेरशाह ने जो विनियम बनाए थे, उनमें से एक के बारे में अब्बास खां सरवानी कहते हैं: "उसका विजयी सैन्य दल लोगों की खेती-बाड़ी न उजाड़ दे, और जब वह सेना के साथ कूच करता था तो स्वयं खेती-बाड़ी की हालत देखता जाता था और घुड़सवारों को चारों ओर यह देखने के लिए फैला देता था कि सेना के जवान किसानों के खेतों का अतिक्रमण न करने पाएं। जो व्यक्ति उसके आदेशों का उल्लंघन करता था और फसलों को नुकसान पहुंचाता था, उसे कड़ा से कड़ा दंड दिया जाता था। इन बातों का सैनिकों पर चमत्कारिक प्रभाव हुआ।[10]

जायसी जानते थे कि पेट मनुष्य की सबसे प्रधान समस्या रही है। वे कहते हैं कि यह पेट महा हत्यारा है, जिसने समस्त तपस्वियों और सन्यासियों को भी झुका दिया है। स्त्री और शैया जहां जिसके पास नहीं है, उनके बिना व्यक्ति बाह पर गर्दन रखकर धरती पर भी सो सकता है। यदि नैत्रों से नहीं सूझता तो मनुष्य अंध भी रह सकता है। मुंह से बात न निकले तो गूंगा भी जीवित रह सकता है। कानों में न सुनाई पड़े तो बहरा भी रह सकता है। लेकिन एक पापी पेट ही जो नहीं मानता। सन्तोष न होने पर द्वार-द्वार फिरता है। अगर यह बैरी पेट न होता तो कोई किसी की आशा न करता।.....

पै यह पेट भएउ बिसवासी। जेहि नाए सब तपा संन्यासी ।।

दारा सेज जहां जेहि नाहीं। भुइ परि रहै लाइ मिव बाहीं।।[11]

Copyright © 2018, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

मध्यकाल में स्त्रियों का अपने पतियों अथवा अन्य पुरुष सम्बन्धियों पर निर्भर रहना हिन्दुओं तथा मुसलमानों के सामाजिक जीवन की एक प्रमुख विशेषता थी। पर उनका प्रतिष्ठापूर्ण स्थान था तथा दाम्पत्य जीवन में उनसे दृढ़ स्वामिभक्ति की आशा की जाती थी। वे साधारणतः अपने घरों में अलग होकर रहती थी। गुजरात के कुछ तटवर्ती नगरों को छोड़कर सर्वत्र पर्दा-प्रथा हिन्दू तथा मुसलमान दोनों में बहुत बढ़ गयी थी। इसका प्रमुख कारण यह था कि विदेशी आक्रमणकारी विशेषतः मंगोलो के हमलों से इस युग में साधारणतया अरक्षा की भावना फैल रही थी। स्त्रियों की संस्कृति उनके वर्गों के अनुसार भिन्न थी। साधारण ग्रामीण स्त्रियां अपने घरेलू कामों में व्यस्त थीं, जबकि उच्चतर वर्ग की कुछ स्त्रियां कलाएं तथा विज्ञान सीखती थीं। रूपमती और पद्मावती शिक्षित स्त्रियों के अच्छे उदाहरण है। लड़का और लड़की दोनों का विवाह कम उम्र में हो जाता था। कुछ वर्गों में सती प्रथा बहुत प्रचलित थी। इब्नबतूता के लेखानुसार विधवा के जलने के पहले दिल्ली के सुलतान से एक प्रकार का अनुमति-पत्र प्राप्त कर लेना पड़ता था।[12]

जायसी ने अपने काव्य-ग्रन्थों में नारी के आदर्श स्वरूप को ही चित्रित किया है, पद्मावती, नागमती, चित्ररेखा तथा कन्हावत की राधा सभी आदर्श भारतीय नारी है। जिनमें भारतीय संस्कृति की पातिव्रत भावना विद्यमान थी। इसी कारण वे पति के शव के साथ चिता में जल गई। जिस पर राजस्थानी वातावरण की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। पद्मावती देवपाल तथा अलाउद्दीन की दूतियों के प्रस्ताव को स्वीकार न कर अपने सतीत्व का परिचय देती है। उस युग में नारी का स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं था। वह केवल पुरुष की अनुगामिनी थी। जायसी ने उसे तलवार अथवा शक्ति की अनुसंगिनी कहा है-

"तिरिया पुहुमिखरग के चैरी। जीते खरग होइ तेहि केरी।।[13]

यद्यपि मध्यकाल में स्त्री शिक्षा जनसामान्य नहीं थी, कुछ विशिष्ट वर्ग तक ही यह सीमित थी। जायसी ने 'चित्ररेखा' में स्त्री शिक्षा का उल्लेख किया है।

"पांच बरिस मंह भई सो बारी।

Copyright © 2018, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

रसना अंब्रित बैन संवारी ।।
लाग पढ़ावह गुरु गनेसू ।
भइ पंडित सुभ सुनी नरेसू।।[14]

इसी प्रकार पद्मावती के ज्ञान के बारे में भी जायसी कहते हैं कि वेद पुराणों के जितने ग्रन्थ हैं सब उसने सुनकर सीख लिए है। नाद का आनन्द और रागों के रस का अनुभव करने वाले श्रवण विधाता ने उसे दिए हैं-

"वेद पुरान ग्रन्थ जत सबै सुनै सिखि लीन्ह।
नाद बिनोद रागरस बिदक स्रवन ओहि बिधि दीन्ह।।[15]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जायसी ने युग जीवन के यथार्थ के ग्रहण में निरन्तर मानवीय सत्य का साक्षात्कार किया है। अपने युग की अनेक विसंगतियों, विडम्बनाओं, कुरूपताओं का उन्होंने तटस्थ दृष्टि से चित्रण किया है, इस कारण जायसी न कबीर के समान युग की मूल्यहीन परिस्थिति को चुनौती देते हैं और न तुलसी के समान आदर्श युगों की मूल्य-दृष्टि के आधार पर समाज का उद्बोधन करते हैं। जहां कबीर ने मूल्यों की प्रतिष्ठा का मार्ग युग की समस्त मूल्यहीनताओं के बीच प्रशस्त किया और तुलसी ने युग की समस्त विकृतियों और विडम्बनाओं के बीच आदर्श मार्ग का निर्देशन किया, वहीं जायसी ने केवल रचना के स्तर पर युग के सन्दर्भ में विषादमयी दृष्टि का परिचय दिया।

संदर्भ सूचीः-

---

[1] रमेशचन्द्र मजूमदार : भारत का बृहत् इतिहास (भाग-1), पृ. 113

[2] हरिश्चन्द्र वर्मा (सं.): मध्यकालीन भारत (भाग-2), पृ. 23

[3] वासुदेवशरण अग्रवाल : पद्मावत, पृ. 15

[4] हरिश्चन्द्र वर्मा : मध्यकालीन भारत (भाग-1), पृ. 29

[5] वासुदेवशरण अग्रवाल : पद्मावत, पृ. 40

[6] वहीं, पृ. 34

Copyright © 2018, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

[7] विजयदेव नारायण साही : जायसी, पृ. 88

[8] शुक्ल : जायसी ग्रन्थावली (अखरावट), पृ. 276

[9] विजयदेव नारायण साही जायसी, पृ. 64

[10] हरिश्चन्द्र वर्मा : मध्यकालीन भारत (भाग-1), पृ. 30

[11] वासुदेवशरण अग्रवाल : पद्मावत, पृ. 89

[12] रमेशचन्द्र मजुमदार : मध्यकालीन भारत (भाग-2), पृ. 121

[13] वासुदेवशरण अग्रवाल : पद्मावत, पृ. 825

[14] शिवसहाय पाठक: चित्ररेखा, पृ. 81

[15] वासुदेवशरण अग्रवाल : पद्मावत, पृ. 605

Copyright © 2018, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies